बाजार तंत्र - प्राचीन से नवीन

डॉ. अंजना चतुर्वेदी
प्राध्यापक - अर्थशास्त्र
शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

बाजार शब्द न सिर्फ एक महत्वपूर्ण शब्द है बल्कि एक महत्वपूर्ण स्थान भी है। वर्तमान समय में तो यह संपूर्ण अर्थव्यवस्था की केन्द्रीय शक्ति की तरह कार्य कर रहा है। सभी प्रकार की आर्थिक क्रियाओं का संचालक बाजार तंत्र ही हैं।

मानवीय सभ्यता के प्रारंभिक काल में मनुष्य की आवश्यकताएँ सीमित थी और व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं द्वारा उत्पादित उत्पादन से कर लेता था। ''एक व्यक्ति द्वारा उत्पादित वस्तु को दूसरे द्वारा उत्पादित वस्तु में बदलकर आवश्यकता की पूर्ति की कोई प्रथा नहीं थी''।[1]

मनुष्य के लिए विवकशील एवं विकासशील होने की अवधारणा ने उसे इस अवस्था से आगे जाने के लिए प्रेरित किया। स्वयं द्वारा उत्पादन से वह एक सीमित दायरे में सिमिट रहा था अतः उसने एक ऐसी प्रणाली पर विचार किया जो एक वस्तु का उत्पादन कशुलता पूर्वक आधिक्य सहित करे ताकि अपनी इच्छा पूर्ति पश्चात् उस आधिक्य से अपनी आवश्यकता की अन्य वस्तुऐं प्राप्त कर सके। यह विचार उपभोग एवं उत्पादन दोनों के लिए विकास का कारण बना। ''मनुष्य इस दिशा में प्रयत्नशील हुआ फलस्वरूप वस्तु विनिमय प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ''।[2] अनुमानतः यही बाजार तंत्र का अभ्युदय कहा जा सकता है। वस्तु विनिमय प्राणाली की अनुभव जन्म कठिनाइयों से दो चार होने पर प्रगतिशील विचारधारा वाले मानव मस्तिष्क ने एक ऐसी सोच विकसित की जिससे परेशानियों को कम किया जा सके और मुद्रा के अविष्कार का मार्ग प्रशस्त हुआ जो वस्तुमुद्रा के रूप में प्रारंभ हुआ। ''आखेट युग में हड्डी, खाल, बाल, चारागाह युग में पशु एवं कृषि युग में वस्तुओं को मुद्रा की तरह उपयोग किया गया''।[3]

मानव एक प्रगतिशील खोजी प्राणी है अतः नित नवीन करने की प्रत्याशा में धातु मुद्रा मान, पत्रमुद्रामानः के दौर से गुजरते हुए वर्तमान अवस्था (मुद्रारहित लेने देन) तक समाज ने बाजार के बदलते हुए स्वरूप को अनुभव किया। समय काल परिस्थियों के वशीभूत बाजार बढ़ते एवं परिवर्तित होते चले गए।

बाजार हमेशा से राज्य की आय का साधन रहा है। वैश्य समाज से कर प्राप्त करना विक्रय प्रणाली एवं बाजार की उपस्थिति का प्रमाण माना जा सकता है। शुक्रनीति में कर वसूल कर्त्ता के बारे में कहा है।

जपोपवासनियम कर्मध्यानरतः सदा।
दान्तः सभी निष्य्यतपोनिश्ठः स उच्यते।।[4]

इसका तात्पर्य है कि राजा को बनिए के मूलधन में कमि न आए, ऐसा सोचकर कर वसूल करने वाले को शौल्किकः अर्थात समाहर्ता के पद पर नियुक्त करना चाहिए। यह बात बाजार की उपस्थिति प्राचीन काल से होना बताती है। वैश्य अथवा व्यापारी प्रजा से अतिरेक मूल्य प्राप्त कर अपने लाभ को बढ़ने की प्रवृत्ति रखते है। चाणक्य कहते है व्यापारियों से प्रजा की रक्षा करना राजा का कत्तर्व्य हैं।

प्रक्षेपं पण्यनिश्पत्तिं, शुल्क वृद्धिमवक्रयम् ।
व्ययानन्यांश्च संख्याय स्थापयेद धर्मर्धवित् ।।[5]

अर्थात मूल्य लगाने में चतुर पण्याध्याक (राजकीय बेचने योग वस्तुओं का अध्यक्ष) व्यापारियों की प्रत्येक वस्तु के मूल्य को उसके उत्पादन व्यय (लगाई गई पूँजी, श्रम, ब्याज, भाड़ा शुल्क आदि अर्थात लागत) का अनुमान करके निश्चित करे। वस्तु का मूल्य तथा मांग एवं पूर्ति बाजार तंत्र के अभिन्न अंग है। कर को वस्तु के मूल्य में समाहित करने की परम्परा पुरातन है। कैटिल्य विश्लेषण में मूल्य नियमन व्यवस्था का भी वर्णन मिलता है।

''चंद्रगुप्त मौर्य के शासन काल में कीमतों के नियमन का कार्य वाणिज्य अधीक्षक के द्वारा किया जाता था। कीमतों को नियत्रित करने का मुख्य उद्‌देश्य चालबाज तथा बेईमान व्यापारियों से लोगों की रक्षा करना था।[6]

अनिवार्य आवश्यकताओं की वस्तुओं का विक्रय राज्य द्वारा संचालित अथवा अधिकृत व्यापारियों द्वारा करवाती थी। ''वाणिज्य अधिकारी स्थानीय वस्तुओं की कीमत पर 5 प्रतिशत तथा बाहर से आने वाली वस्तुओं की कीमत पर 10 प्रतिशत का लाभ निर्धारित करता था।[7]

पूर्व मध्यकाल में कृषि प्रमुख व्यासाय के स्वरूप में थी जो बाजार के माध्यम को जन-जन तक पहुँचता था। इस काल में बाजार मेला रूप में प्रतिविंबित होता था। ''साक्ष्य के आधार पर कृषि मेला का विवरण - जैसे कश्मीर में जौ पकने पर मेला आयोजन, वैसाख पूर्णिमा पर तिल संबंधित मेला एवं बृहत्कल्प वाश्य में जुताई के देवता के सम्मान में लगने वाले मेला बाजार व्यवस्था की पुष्टि करते है।[8]

विकास की बढ़ती द्रुत गति के साथ बाजार ने भी अपना स्वरूप बढ़ाया, स्थानीय से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के बाजार, मिश्रित एवं विशिष्ट बाजार, अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन बाजारों का अस्तित्व दिखाई देने लगा विद्वानों ने वस्तु की प्रकृति के आधार पर बाजार का विश्लेषण किया तो क्रेता एवं विक्रेता की प्रवृत्ति के आधार पर बाजार के रूप स्पष्ट किए। शैनः शनैः सम्पूर्ण अर्थव्यस्था बाजार आधारित अर्थव्यस्था मै परिवर्तित होती गई।

प्रत्येक पूर्व कालिक अवस्था में बाजार का एक अपना अलग स्वरूप देखने को मिला। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आवश्यकता एवं योग्यता के आधार पर बाजार की जरूरत थी। एक बिना पढ़े लिखें मजदूर व्यक्ति को भी अपने स्तर का बाजार अपने जीवको पार्जन हेतु आवश्यक होता है भारतीयग्राम, व्यवास्था में हाट बाजार की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है सप्ताह में एक दिन बाजार का स्थान नियत होता था एवं व्यक्ति उस स्थान पर क्रय विक्रय हेतु उपस्थित हो जाते थे। आज भी यह परम्परा जीवित है एवं सभी बड़े शहरों एवं गांव में ऐसे वाजार दिखाई देते है।

समयानुसार इनके स्वरूप ने भी आधुनिक्ता को अपने में समाहित कर लिया है और परेशानियों को कम किया है इसका उदाहरण गोल बाबडी हाट बाजार है। ''यह बड़वानी को 37 कि.मी. दूर सात ग्रामों के केन्द्र में अनुसूचित जाति वर्ग द्वारा स्थापित हाट बाजार है एवं ग्राम सभाद्वारा अनुदान राशि से प्रारंभ किया गया हाट बाजार है।''[9]

ISSN 2395-051X

व्यक्ति की आवश्यकताएँ एवं विकास की इच्छा बाजार के रूप मे परिवर्तन हेतु सदैव उत्तर दायी रही है। प्रकृति वादी अर्थशास्त्री बंद अर्थव्यस्था के अर्थात अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विहीन अर्थव्यवास्था के समर्थक थे। भारत में भी स्वतंत्रता के बाद बहुत समय तक प्रतिबंधात्मक विदेशी व्यापार की नीति को अपनाया जाता रहा है। समय की मांग एवं बिगडती अर्थव्यस्था ने भारत को भी मुक्त व्यापार अर्थात भूमंडली करण एवं उदारीकरण की नीति को अपनाने पर सोचने के लिए विवश किया। "देश के समक्ष भुगतान संतुलन का संकट था अतः उद्योगों पर नियंत्रण शिथिल करने, उद्यमियो में प्रतिस्पार्धात्मक प्रवृत्ति विकसित करने, वर्जित भागों में निजि विनियोग को प्रवेश देने, प्रौद्योगीकी हस्तांतरण एवं विदेशी पूँजी के अन्तर्प्रवाह हेतु 1991 में उदारी करण की नीति को अपनाया गया।[10]

जिससे बाजार का विस्तार हुआ एवं इसके समर्थको ने उत्पादन बढ़ाने मुक्त प्रतिद्वदिंता एवं निवेश वृद्धि हुते आवश्यक बताया। विकास की तीव्र गति में संचार क्रांति से एक नये युग का आगमान किया और बाजार एक नियत स्थान को उठकर व्यक्ति के हाथ में आ गया। "15 अगस्त 1995 में देश में पहली वार इंटरनेट का प्रयोग हुआ था।[11]

यह 24 वर्ष पूर्व की चिंगारी वर्तमान में मशाल बन गई है। बाजार विस्तार में नेट में महत्वपूर्ण भूमिका का दायित्व पूर्ण किया है। पहले यह सिर्फ कम्प्यूटर पर उपलब्ध हो पाती थी अब मोबाइल से जुड़ जाने के कारण बाजार अपने स्थान से उठकर घर तक और जेब तथा हाथ-हाथ तक पहुँच गया है। विभिन्न कम्पनियाँ एप के माध्यम से आनलाइन बाजार संचालित करती है। प्रत्येक व्यक्ति इस आनलाइन शॉपिंग के नशे में डूब कर अच्छा, बुरा, जरूरी-गैरजरूरी सभी वस्तुओं की खरीद कर रहा है।

किसी भी चीज का अत्यधिक विस्तार उसे अनियंत्रित कर देता है इसी कारण बाजार भी नियंत्रण से बाहर होते जा रहे है। बाजार वृद्धि एवं विस्तार से उपभोक्ताओं को लाभ हुआ है उन्हें कम कीमत पर वस्तुओं की प्राप्ति हो रही है। वस्तुओं की किस्म एवं गुण्वत्ता में भी सुधार हुआ है।

बाजार के विस्तार कुछ दुघर्टनाओं को भी जन्म देने लगा है। बैंक का दिवालिया, होना मकान जमीन की कीमतों में कमि, मुद्रा मूल्य की अस्थिरता एवं सामाजिक बुराईयाँ बेरोजगारी में वृद्धि हुई है। फलस्वरूप सामाजिक वातावरण बदलने लगा है। इस कारण बाजारों पर नियंत्रण अति आवश्यक है बाजार स्वतः संचालित एवं विनियनित कभी नहीं होते उनके संचालन और विनियमन के लिए अपयुक्त संस्थानों नियमो, विनियमो और प्रतिमानो की आवश्यकता होती है बेलगाम बाजार अपने को विनाश की ओर ले जाते है, परिणामस्वरूप बेरोजगारी, संसाधनों की बरबादी और सामाजिक राजनैतिक झगड़े एवं प्रतिद्वदिंता बढ़ जाती है जो सामाजिक आर्थिक सुरक्षा के लिए खतरा बन सकती है।

सन्दर्भ

1. मुद्रा एवं बैकिंग - दुबे पाण्डेय, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली 1979, पृ. 1
2. वही, पृ. 1
3. वही, पृ. 2
4. शुक्र नीति - डॉ. जगदीश चंद्र मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी 2009, पृ. 207
5. सम्पूर्ण चाणक्य नीति - पं. सत्यनारायण शर्मा साक्षी प्रकाशन दिल्ली 2013, पृ. 203

6. कौटिल्य का अर्थशास्त्र - समीक्षात्मक अध्ययन डॉ. उमाशंकर प्रसाद श्रीवास्तव प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली 1988, पृ. 24
7. वही, पृ. 25
8. पूर्व मध्यकालीन भारत की चंदेलवंशीय अर्थव्यवस्था - लेख मध्यभारती शोध पत्रिका डॉ. हरिसिंह गौर वि.वि. प्रकाशन 73 अंक 2017, पृ. 125
9. विकास यात्रा - म.प्र. ग्रामीण आजिविका परियोजना पचांयत एवं ग्रामीण विकास द्वारा प्रकाशित अरेरा हिल्स भोपाल 2010, पृ. 34
10. भूमण्डलीकरण नीति एवं नियति - उदारीकरण एवं श्रम - आफताब अहमद सिद्धकी डॉ. हरिसिंह गौर वि.वि. का प्रकाशन सागर 2009, पृ. 154
11. गूगल से प्राप्त जानकारी के आधार पंर